अभिषेक

(नवम् सर्ग)

प्रसाद छन्द

पर्याकुल[१] लोचन चर[२] ने,
सारा वृत्तान्त सुनाया।
किस भाँति भीम ने छल से,
कुरुपति को आज गिराया।।१।।

बोला गुरुपुत्र सुनो तुम,
अन्याय हुआ है भारी।
नरपति के दृढ़ उरु[३] द्वय पर,
गुरु[४] गदा गई है मारी।।२।।

दल सहित पाण्डु पुत्रों ने,
घेरा जाकर उस ह्रद्[५] को।
विश्रान्त नीरतल में जो,
ललकारा कर्ण सुहृद को।।३।।

सुनकर आह्वान द्विषद[६] का,
निकले वह जल से बाहर।
सुनकर चिंघाड़ द्विरद[७] की,
आता ज्यों क्रोधन नाहर।।४।।

विश्राम कर रहा था मैं,
परिश्रान्त और एकाकी।
बेचैन किये है तुमको,
मदिरा यदि प्रतिहिंसा की।।५।।

तो एक कर आओ,
रण का ज्वर भी उतरेगा ।
मम गदाघात से रक्तिम,
वैतरणी त्वरित तरेगा ।।६।।

तब भीम भीमकर्मा से,
प्रारम्भ गदा का था रण ।
बल विक्रम दोनों का ही,
था शत्रु व्यथा का कारण ।।७।।

भिड़ गये मत्त दन्ती से,
जय करिणी[८] को पाने को।
लाघव, क्षिप्रता, कला में,
पर से आगे जाने को।।८।।

शार्दूल परस्पर कोपित,
लड़ते स्वक्षेत्र रक्षण को।
विक्रमीं वेग युत दोनों,
आतुर परयशभक्षण को ।।६।।

दोनों की सुदृढ़ गदाऐं,
चिनगारी थीं विखरातीं ।
उल्का द्वय सी उठ नभ में,
नादित हो जब टकरातीं ।।१०।।

तेरह संवत्सर जिसने,
अनिशं[६] अभ्यास किया हो ।
दश सहस[१०] नागबल वपु पर,
निज पर विश्वास किया हो।।११।।

मानी दानी कुरुपति के,
बलराम स्वयं रणगुरु थे ।
था वज्रोपम वपु जिसका,
करिकरनिभ दृढ़ युग उरु थे ।।१२।।

पड़ते हों बीस वृकोदर,
आकार और भुजबल में ।
पर भारी पड़ा सुयोधन,
अभ्यास गदा कौशल में ।।१३।।

की गदाघात से प्रमथित,
पृथुकाय भीम की काया ।
चिन्तित थे केशव अर्जुन,
भय धर्मराज उर छाया ।।१४।।

प्रत्युत्तर देते रिपु को,
जब लगे विलम्बित होने ।
भैरव आघातों से जब,
वे भीम चेतना खोने ।।१५।।

तब कहा पार्थ ने केशव,
होगी क्या परिणति रण की ।
बोले वे याद दिलाओ,
पवनाङ्गज को निज प्रण की।।१६।।

अन्यथा भीम पर संकट,
लग रहा मुझे गहराता ।
संकट में डाल चुके हैं,
सबको तव अग्रज भ्राता।।१७।।

लड़ रहा युद्ध दुर्मद यह,
प्राणों का मोह बिसारे ।
संकल्पित परम सुयोधन,
परिणाम न आज विचारे ।।१८।।

ऐसे योद्धा के सम्मुख,
वासव[११] भी क्या टिक पाते ।
जीतना कठिन है इनका,
ये भीम वृथा भरमाते ।।१६।।

तुम याद दिलाओ इनको,
उस द्यूत सभा के प्रण की ।
तो दिशा बदल जायेगी,
तत्क्षण इस भीषण रण की ।।२०।।

अग्रज की ओर निहारा,
ठौंका नर[१२] ने निज उरु को ।
भीम ने उछलता देखा,
नभ में दुर्जय उस कुरु को ।।२१।।

आघात किया उरु द्वय पर,
वज्रोपम लौह गदा से ।
था आज पूर्ण प्रण उनका,
मन में जो बसा सदा से ।।२२।।

भू शायी कुरुपति शिर को,
पाण्डव ने वाम चरण से ।
मारी ठोकर निन्दित कर,
नृप पड़े आज अशरण से ।।२३।।

सुनकर यह करुणादायी,
वृत्तान्त द्रौणि उठ धाये।
रथ पर पीछे से सत्वर,
कृतवर्म और कृप आये।।२४।।

तीनों ही तीव्र रथों से,
पहुँचे द्वैपायन सर पर।
अन्याय हुआ प्राणान्तक,
था जहाँ वीर वर नर पर।।२५।।

भू लुठित वहाँ अवलोका,
रुधिरात्त - देहधारी को।
मर्मान्तकपीड़ाभोगी,
अपने उस उपकारी को।।२६।।

गर्वोन्नत शाल विटप ज्यों,
उद्धत - समीर - निर्मूलित।
थे पड़े नृपति भूतल पर,
थे नेत्र रोष उन्मीलित।।२७।।

परिवर्तित[१३] होता क्षण - क्षण,
अतिशय आहत विषधर सा।
ताड़ित सुरपति आयुध से,
होता प्रतीत भूधर सा।।२८।।

गजराज पड़ा ज्यों आहत,
विषयुत किरात बाणों से।
चेतना समेटे कथमपि,
क्रमशः बुझते प्राणों से।।२६।।

रथ से उतरे तीनों वे,
बैठे समीप उस नृप के।
था क्रोध द्रौणि आनन पर,
आँखों में आँसू कृप के ।।३०।।

हार्दिक्य[१४] नतानन चुप था,
सब पर विषाद था छाया।
स्वर निकला द्रौणायनि का,
आवेशित कुछ भर्राया ।।३१।।

नरपतिमाला रज पड़ती,
थी नित्य इन्ही चरणों पर।
कोई न दृष्टि टिकती थी,
आभामय आभरणों पर ।।३२।।

वह धूल धूसरित वपु यह,
नरपतियों के नरपति का।
ज्ञापक अवार्य धरणी पर,
उस कुटिल काल की गति का ।।३३।।

यदि चक्रवर्तियों की भी,
प्रभु दशा यही होती है।
फिर थिर किसकी वसुधा पर,
लक्ष्मी प्रभुता होती है ।।३४।।

था शासन निखिल धरा पर,
शिरमौर रहे नृपगण के।
क्या अधिकारी थे ऐसे,
कुत्सित छलपूर्ण मरण के ।।३५।।

अब दण्ड कहाँ अवनीपति,
तव छत्र नहीं दिखता है ।
क्या क्रूर विधाता ऐसी,
नर नियति हाय लिखता है ।।३६।।

स्वर्णिम सिंहासन उन्नत,
मणिमय किरीट सब गत है ।
एकादश अक्षौहिणि बल,
भारती भूमि निपतित है ।।३७।।

दश सहस नाग बल धारी,
यदि पड़े रेणु से रूषित[९५] ।
तो कौन धरा पर चिर तक,
रह सकेता महिमा भूषित ।।३८।।

गाङ्गेय कहाँ हैं गुरुवर,
साथी अंङ्गेश[९६] कहाँ है ।
समृद्धि जहाँ बसती थी,
वह मधुमय देश कहाँ है ।।३९।।

बोले कृप याचक घेरे रहते,
थे जिस दानी को ।
वन सत्व[९७] घेर कर स्थित हैं,
आहत भूगत[९८] मानी को ।।४०।।

वसुधा का और प्रजा का,
करता था जो संरक्षण ।
कर रहा हन्त! पशुओं से,
व्रण[९९] पूर्ण देह का रक्षण ।।४१।।

वेदना समेटे मन में,
तब बोल उठा वह मानी ।
मेरे हित शोक करो मत,
तुम वीर सभी हो ज्ञानी ।।४२।।

मैं रहा प्रजा का पालक,
याचक न निराश किये हैं ।
मित्रों को मान दिया है,
अरिगण को त्रास दिये हैं ।।४३।।

गर्वोन्नत शीश रखा है,
है क्षत्र-धर्म को पाला ।
रण बीच कभी इस कुरु ने,
पीछे को चरण न डाला ।।४४।

मैं नहीं पराजित होकर,
जा रहा असार भुवन से।
अतएव शोक को सुहृदो[२०],
तुम दूर करो निज मन से।।४५।।

कोई न गदाधर भू पर,
परिभूत[२१] कर सका बल से ।
आहत हो पड़ा अवनि पर,
मैं मात्र भीम के छल से ।।४६।।

जो भी प्राणी धरणी पर,
है अन्त सभी का आता।
बस निश्चित एक अवधि तक,
है रहता सबसे नाता ।।४७।।

जब बन्धु गये सब दिव[२२] को,
तो मैं भूपर क्या करता ।
होता जीवन पीड़ा मय गुरु,
तनय! नहीं यदि मरता ।।४८।।

यदि वेद प्रमाणित हैं तो,
जाऊँगा मैं सुरपुर को ।
भोगें अब पाण्डव मोदित,
निर्धन निर्जन गजपुर[२३] को ।।४९।।

मेरे हित आप सभी ने,
अतिशय बलिदान किया है ।
मेरे दुर्गुण सहकर भी,
राजा कह मान दिया है ।।५०।।

सन्तुष्ट पूर्ण हूँ सबसे,
मैं हूँ अतिशय आभारी ।
देखा सकुशल तुम सबको,
मन मेरा हर्षित भारी ।।५१।।

वेदना मर्म भेदी थी,
इतना ही वह कहपाया ।
हो गये सजल युग लोचन,
नृप कण्ठ हन्त भर आया ।।५२।।

तीनों वे धीर महारथ,
यह दशा देख थे रोते ।
आधार नष्ट था अब वह,
जिस पर थे स्वप्न सँजोते ।।५३।।

धिक्कार अहा पौरुष को,
जो देख रहे नरपति को ।
आहत मुमूर्षु[२४] अवमानित[२५],
छल से प्रापित[२६] इस गति को ।।५४।।

योद्धा थे धन्य अरे वे,
जो मरे आपके कारण ।
मैं क्लीव[२७] देख यह क्षति भी,
करता हूँ जीवन धारण ।।५५।।

मैं प्रेष्ठ[२८] पिता के वध को,
मर्शित[२९] अब तक करता था ।
कोई अनीति करने से,
मेरा मन अति डरता था ।।५६।।

ये पार्थ बढ़ाते जाते,
श्रृङ्खला कुटिल कर्मों की ।
केशव नित नयी व्यवस्था,
देते इनके धर्मों की ।।५७।।

तो सुनो प्रतिज्ञा करता,
मैं नय[३०] से या कि अनय से ।
पाञ्चाल विनाश करूँगा,
वे नहीं बचेंगे भय से ।।५८।।

अपनी अनीति का फल ये,
पापी पाण्डव पायेंगे ।
उपहास किया मम नृप का,
वे सोमक पछतायेंगे ।।५९।।

मम कृत विनाश लीला को,
देखेगा यह जग सारा ।
अब तक प्रताप देखा है,
देखे प्रतिशोध हमारा ।।६०।।

सुन प्रीत हुये अति पार्थिव,
बोले गुरु जल ले आओ ।
भरकर इस दीप्त कलश में,
अब समय न और गँवाओ ।।६१।।

क्षण हैं मेरे गिनती के,
शुभ कार्य त्वरित करना है ।
अपना अन्तिम सेनानी,
अभिषिक्त मुझे करना है ।।६२।।

सस्मित पर सजल नयन से,
देखा तब द्रोण-तनय को ।
शोधित[३१] करना है तुमको,
पाण्डव - कृत बहुल अनय को ।।६३।।

नृप होते रहें निषूदित,
पर राष्ट्र - भक्ति जीती है।
वह धन्य धरा होती जो,
बलिदान सुधा पीती है ।।६४।।

तुम दोनों तात अमर हो,
कृतवर्मा भी दुर्जय है ।
दुर्घर्ष अतीव त्रयी को,
आकुल खोजती विजय है।।६५।।

आचार्य वधान्तर ही जो,
शुभ कर्म मुझे करना था ।
मन्त्रणा नहीं गुरुसुत की,
भी हृदय मुझे धरना था ।।६६।।

जब किया तिलक मस्तक पर,
कुरुपति ने कम्पित कर से ।
रदपुट[३२] फड़के गुरुसुत के,
लोचन फिर दोनों बरसे ।।६७।।

अरुणिमा मन्युजा[३३] तत्क्षण,
प्रस्फुरित हुई सुवदन से ।
आ गया बुलावा अरि का,
अन्तक[३४] के ऊर्ध्व सदन से ।।६८।।

अपना संकल्प क्रियान्वित,
करने अन्तिम सेनानी ।
चल पड़ा साथ मातुल के,
पीछे कृतवर्मा मानी ।।६९।।

सरसी छन्द

वसु[३५] समेट तब चले खिन्न मन पश्चिम ओर दिनेश[३६] ।
द्युति थी अब नभस्थ भू पर थे उसके कुछ अवशेष ।
होने लगा शीघ्र ही जग में तम का अगम प्रसार ।
मूर्च्छा में संसृति ज्यों जाती खाकर विषम प्रहार ।।७०।।

कुछ क्षण का ही है कलरव सब सत्व हुए परिश्रान्त ।
गहन प्रमीला छाएगी कर जाग्रति को आक्रान्त ।
भूमि और नभ हुए त्वरित ही मिलकर एकाकार ।
बना लिया अन्धक[३७] ने मानो सर्जन को आहार ।।७१।

सन्दर्भ सूची

१. व्याकुल नेत्रों वाला, २. गुप्तचर, ३. जंघा, ४. भारी, ५. सरोवर, ६. शत्रु, ७. हाथी, ८. हथिनी, ६. लगातार, १०. हाथी, ११. इन्द्र, १२. अर्जुन, १३. तड़पता हुआ, १४. कृत वर्मा, १५. घूसरित, १६. कर्ण, १७. प्राणी, १८. धराशायी, १६. घाव, २०. मित्र, २१. पराजित, २२. स्वर्ग, २३. हस्तिनापुर, २४. मरणासन्न, २५. अपमानित, २६. पहुँचाया गया, २७. नपुंसक, २८. परम प्रिय, २६. सहन करना, ३०. नीति, ३१. चुकाना, बदला लेना, ३२. ओठ, ३३. क्रोध से उत्पन्न, ३४. यमराज, ३५. दीप्ति, किरणें, ३६. सूर्य, ३७. अन्धकासुर जिसे शिवजी ने मारा था।